सम्यक् ज्ञान

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सम्यक् ज्ञान को प्रमाण कहा जाता है। सम्यक् ज्ञान क्या है? इस संबध में कहा जा सकता है कि जिससे जाना जाता है वह ज्ञान है। ज्ञान का अर्थ है जानना। जानना आत्मा का गुण है। जीव और अजीव का विभाजक तत्त्व है– ज्ञान। जो आत्मा है, वह जानता है। जो जानता है, वही आत्मा है। इसका अर्थ हुआ कि ज्ञान आत्मा का व्यवच्छेदक धर्म है, आत्मा और अनात्मा की भेदरेखा है। ज्ञान का अर्थ है– संवेदन, अधिगम, वेदना, भाव आदि। पर वस्तुतः ये ज्ञान शब्द के अर्थ को पूर्णतः अभिव्यक्त कर देते हैं, यह कहना ठीक नहीं है। उत्पत्ति की दृष्टि से ज्ञान शब्द की व्याख्या कर्तृ, करण, भाव और अधिकरण साधन के रूप में की जा सकती हैं। फलतः आत्मा की वह परिणति जो ज्ञाता है, ज्ञान का साधन अथवा आधार है, अथवा ज्ञप्ति है, वह ज्ञान है।

आत्मा और अनात्मा में अत्यन्ताभाव है। आत्मा कभी अनात्मा नहीं बनता और अनात्मा कभी आत्मा नहीं बनता। आत्मा भी द्रव्य है और अनात्मा भी द्रव्य है। दोनों अनन्तगुण और पर्यायों के अविच्छिन्न समुदाय हैं। सामान्य गुण से दोनों अभिन्न भी हैं और विशेष गुण से भिन्न हैं। वह विशेष गुण चैतन्य नहीं है। जिसमें चैतन्य है, वह आत्मा है और जिसमें चैतन्य नहीं है; वह अनात्मा है। ज्ञान और आत्मा भिन्नाभिन्न हैं। ज्ञान आत्मा ही है, इसलिए वह आत्मा से अभिन्न है। ज्ञान गुण है आत्मा गुणी है, ज्ञान अनन्त गुणों का समूह है, इसलिए गुण और गुणी के रूप में ये भिन्न भी हैं।

ज्ञान का तात्पर्य है, वस्तु के स्वरूप का अवधारण करना, अर्थात् जिसके माध्यम से ज्ञाता को यह ज्ञात हो जाए की उसके विषय का स्वरूप 'यह है' वह परिणति ज्ञान हैं। ज्ञेय के स्वरूप का निश्चय करने के लिए तदितर वस्तुओं का पररूपों का अपनोद भी अनिवार्य है। अर्थात् जब कोई व्यक्ति यह जानता है, कि अमुक वस्तु घट है, तो इसका अर्थ यह ही हुआ कि वह जानता है कि विवक्षित वस्तु पट नहीं है। जिस–जिस पदार्थ से जीवादिक पदार्थ व्यवस्थित हैं, उस–उस प्रकार से उनको जानना सम्यक्ज्ञान है। ज्ञान के पहले सम्यक् विशेषण संशय और विपर्यय ज्ञानों का निराकरण करने के लिए दिया है। ज्ञेय का यथार्थ प्रकाशन ज्ञान है अर्थात् चेतना की वह शक्ति जिससे जीव आदि का तत्त्वतः प्रकाशन होता है, वह ज्ञान है। इस प्रकार वे सभी संवेदनाएं जिनके उद्गम एवं स्वरूप को ज्ञाता जानता है तथा जिनमें स्वरूप को ग्रहण के साथ पररूप के परित्याग या विवेक की क्षमता है, वे ज्ञान है। जिसके द्वारा जाना जाता है या जानना मात्र ज्ञान है। जो एक मात्र आत्मा का गुण है और स्व तथा पर का प्रकाशन है, वह ज्ञान है। जो जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। अर्थात् साकार उपयोग को ज्ञान कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा यह आत्मा जानता है,

जानता था, जानेगा, ऐसे ज्ञानावरण कर्म के एकदेश क्षय से अथवा सम्पूर्ण ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न हुए आत्मा के परिणाम को ज्ञान कहते हैं।

ज्ञान शब्द क्रिया का द्योतक है। जिसके द्वारा जाना जाये, अथवा जानने मात्र को ज्ञान कहते हैं। ज्ञान साकार होता है। स्व और पर आकार एक ही साथ प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार जिसमें एक ही साथ स्व–पराकार अवभासित होते हैं, ऐसा अर्थविकल्प वह ज्ञान है। अर्थात् ज्ञानभूमि में प्रतिभासित बाह्य पदार्थों के आकार या प्रतिबिम्ब ज्ञान के विकल्प कहे जाते हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र मुक्ति के मार्ग हैं। सम्यक् ज्ञान हो जाने के बाद यह ज्ञात हो जाता है कि यह संसार मिथ्या है। जिस वस्तु को प्राप्त करने के लिए हमने जीवनभर प्रयास किया वह वस्तु मेरी नहीं है। वह पुद्गलों का समूह है। जो वस्तु मेरी है उसको तो मैंने पहचाना ही नहीं। यही वस्तु जब ज्ञात हो जाती है तो आदमी मुक्त हो जाता है। मनुष्य के द्वारा किये गये कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को संसार में रहते हुए विरक्त रहना चाहिए। जल में कमल की भांति जो व्यक्ति निर्लिप्त रहता है उसे कर्म बंधन नहीं होता।

योगी लोग आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं। भोगी लोग अज्ञान के कारण इस संसार को ही सबकुछ मानकर उसी में भ्रमण करते हैं। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। इसकी प्राप्ति के बाद किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। सब प्रकार के दोषों से रहित होने पर सम्यक् ज्ञान, ब्रह्मचर्य और सत्य के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। सम्यक् ज्ञान ही एक ऐसा आचार है जिसके द्वारा निखिल कर्मों का विलय किया जा सकता है। इस ज्ञान की उपलब्धि में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये सत्यानुष्ठान की महती आवश्यकता होती है। सत्य का अनुष्ठान और तपस्या के द्वारा सम्यक्ज्ञान की उपलब्धि होती है–

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा, सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है।